इकाई 2 राष्ट्रीय आंदोलन : शिक्षा सुधार और विरासत

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 उपनिवेशीय शिक्षा का प्रभाव

2.3.1 ब्रिटिश नीति के उद्देश्य

2.3.2 शिक्षा की विषयवस्तु तथा शिक्षण शास्त्र

2.4 राष्ट्रीय चेतना के पुनरुत्थान को प्रेरित करने वाले कारक

2.4.1 केन्द्रीकृत प्रशासन तथा आर्थिक एकीकरण

2.4.2 मुद्रणालय/छापाखाना

2.4.3 संचार माध्यम

2.4.4 नई शिक्षा प्रणाली

2.4.5 ब्रिटिश शासन का भेदभावपूर्ण स्वभाव

2.5 मध्य वर्ग, प्रबुद्ध वर्ग तथा सामाजिक सुधार

2.5.1 नए वर्ग के विचार तथा दर्शन

2.5.2 सामाजिक सुधारक तथा शिक्षा पर सार्वजनिक बहस

2.6 अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रयासः गोपाल कृष्ण गोखले

2.6.1 गाँधी और शिक्षा की वर्धा योजना

2.6.2 शिक्षा पर टैगोर के विचार

2.6.3 गीजूभाई बढ़ेका

2.7 शिक्षा पर राष्ट्रवादी विचार : महत्व तथा विरासत

2.8 सारांश

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.10 संदर्भ तथा उपयोगी पठन सामग्री

2.1 प्रस्तावना

अंग्रेज़ों ने भारत में अपना पहला कदम ईस्ट इंडिया कंपनी नामक व्यावसायिक संस्था के रूप में रखा। इस कंपनी के अधिकांश कर्मचारियों का वेतन बहुत ही कम था और स्थानीय शिक्षा के प्रति इनकी कोई रुचि नहीं थी। अंग्रेज़ी व्यापारिक हितों की रक्षा के लिए इस कंपनी ने अंग्रेज़ी साम्राज्य की अधीनस्थ सेवा का रूप ले लिया। इस नए कर्तव्य के निर्वाह के लिए कंपनी ने भारतीय समाज के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण लोक समूहों को कंपनी में कार्यों में सम्मिलित करना पड़ा जो भारत में ब्रिटिश उपनिवेश को स्थापित करने में सहायता कर सकते थे। इन उपनिवेशकों ने एक नई व्यवस्था के सृजन के लिए तथा विश्वसनीय मूल निवासियों का एक वर्ग स्थापित करने के लिए एक शिक्षा प्रणाली लागू की। इस शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य इसका विस्तााार करना तथा स्थानीय समुदायों/निवासियों की सहायता से अपने लाभ कमाने को सुगम बनाना था और पाश्चात्य विज्ञान के प्रकाश के माध्यम से भारत की अज्ञानता को दूर करना ताकि भारतीय तर्क आधारित जीवन जी सकें तथा अपनी भावनाओं को काबू में रख सकें। ऐसे विचार चार्ल्स ग्रांट के थे जो सन् 1767

में भारत में आया और यह दावा किया कि केवल यूरोपीय विज्ञान और साहित्य के माध्यम से ईसाइयत का स्वास्थ्यकर स्पर्श भारतीय परिप्रेक्ष्य में अच्छा परिवर्तन लाने के लिए सक्षम हो सकता है। उसकी धारणा थी कि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनिवार्य है तथा अच्छे नैतिक चरित्र वाले अध्यापकों के द्वारा अंग्रेज़ी विद्यालयों की स्थापना की आवश्यकता थी।

इस इकाई में हम भारतीय समाज के प्रबुद्ध वर्ग तथा मध्य वर्ग पर उपनिवेशीय प्रभाव की विवेचना करेंगे। इन विभेदनकारी तथा शोषणकारी नीतियों के प्रति उनकी अनुक्रिया का अध्ययन करेंगे और राष्ट्रवाद का उदय तथा इसका शिक्षा पर प्रभाव पर भी विचार करेंगे।

हम इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि राष्ट्रवादी विचार अंग्रेज़ों के विचारों से भिन्न थे अथवा नहीं और अंत में इस बात का विश्लेषण करेंगे कि किस प्रकार अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली की विरासत आज के संदर्भ में भी दिखाई देती है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि:

- अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भारतीय मध्य वर्ग पर औपनिवेशिक शिक्षा के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे;
- उन कारकों की विवेचना कर सकेंगे जिनके कारण राष्ट्रीय चेतना के पुनरुत्थान को प्रेरणा मिली;
- ब्रिटिश नीति के फलस्वरूप भारतीयों में उत्पन्न नए वर्ग की व्याख्या कर सकेंगे; और
- प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में गाँधी, टैगोर तथा गीजू भाई के योगदान पर प्रकाश डाल सकेंगे।

2.3 उपनिवेशीय शिक्षा का प्रभाव

इससे पिछली इकाई में हमने इस बात पर चर्चा की कि अंग्रेज़ों के भारत में आने से पूर्व स्थानीय शैक्षिक संस्थाएँ औपचारिक रूप से विशेष जाति समूहों या व्यवसायों की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगी हुई थीं। जब ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में आई तो इसने शिक्षा पर अपने विचारों को एक ऐसी नीति के रूप में अभिव्यक्त किया जिससे पूर्वी देशों की संस्कृति तथा पाश्चात्य विज्ञान दोनों को प्रोत्साहन मिलता था। इस बात पर भी मतभेद स्पष्ट थे कि कंपनी ने पूर्वी विद्याओं को प्रोत्साहित करना चाहिए अथवा केवल पाश्चात्य विद्याओं को।

सन् 1813 में अगले 20 वर्षों के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी के चार्टर का नवीनीकरण करते हुए ब्रिटिश संसद ने अधिनियम पारित कर जहाँ एक ओर मिशनरियों को भारत में कार्य संचालन करते रहने के लिए अधिकृत किया वहीं दूसरी ओर गवर्नर–जनरल को यह अधिकार दिया कि वह साहित्य के पुनर्जीवन तथा सुधार, भारतीयों में पढ़ाई लिखाई और विज्ञान अध्ययन को प्रोत्साहित करने तथा लागू करने के लिए कम से कम एक लाख रुपये की धनराशि का विनियोजन करेगा। यद्यपि यह धनराशि संसद द्वारा स्वीकृति थी परंतु पूर्ण रूप से खर्च नहीं की जाती थी।

वस्तुतः सन् 1823 तक इस संदर्भ में कुछ नहीं किया गया उस समय ब्रिटिश सरकार द्वारा लोक शिक्षा पर एक व्यापक समिति का गठन किया गया। इस समय तक ब्रिटिश सरकार भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए मुख्य एजेंट का रूप धारण कर चुकी थी, जैसा कि पहले देखा गया है, भारत में ब्रिटेन की मुख्यतः राजनीतिक, प्रशासनिक तथा

आर्थिक आवश्यकताओं से अभिप्रेरित थी। भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रथम प्रयास लॉर्ड डलहौजी के शासन काल में हुए। ब्रिटेन ने भारतीय क्षेत्र का काफी बड़ा भाग अपने अधीन कर लिया। इसके पश्चात् ब्रिटेन के औद्योगिक उत्पाद भारत में आने लगे और भारत और ब्रिटेन में व्यापार व्यापक रूप से बढ़ने लगा।

शिक्षा के प्रयोजन की दृष्टि से उस समय अंग्रेज़ अधिकारी तीन स्तरों पर कार्य करते थे। एक ओर प्राच्यविदों के अनुसार भारतीय संस्कृति से काफी कुछ प्राप्त किया जा सकता है अतः शिक्षा और ज्ञान की देशज प्रणाली के प्रोत्साहन का समर्थन किया। दूसरी ओर मिशनरियां के विचार में भारतीय संस्कृति तथा रीतियाँ असभ्य तथा पुरानी हैं और अतः भारतीयों में पाश्चात्य शिक्षा के प्रोत्साहन के द्वारा सुधार लाने तथा उन्हें ईसाई धर्म अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया। उपयोगितावादियों ने पाश्चात्य विज्ञान की पढ़ाई का समर्थन किया क्योंकि इससे भारतीय समाज का विवेकपूर्ण या तर्कणापरक विकास सुनिश्चित हो सकता था तथा इससे भारत के भौतिक विकास में वृद्धि होगी (बोअर्स, 1961)। इन तीनों स्थितियों की अभिव्यक्ति कुछ सीमा तक 1835 के लॉर्ड मैकॉले के शिक्षा के अभिलेख में देखी जा सकती है (स्मरण रहे कि मैकॉले भारत के सर्वोच्च परिषद का सदस्य था) जिसने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की वकालत की जिस के अंतर्गत अंग्रेज़ी माध्यम से यूरोपीय विज्ञान और साहित्य पढ़ाया जाना था। मैकॉले का यह कथन काफी प्रसिद्ध है जिसमें उसने कहा था कि अंग्रेज़ी आधारित शिक्षा प्रणाली निर्धन और अनपढ़ भारतीयों को व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग में परिवर्तित कर देगी जो रंग और रक्त की दृष्टि से तो भारतीय होंगे परंतु रुचि की दृष्टि से, विचारों की दृष्टि से, नैतिकता में तथा बुद्धि में अंग्रेज़ों जैसे होंगे (डी बेरी (संपा.), 1958, पृ.601) अर्थात् इसका उद्देश्य था भारतीय नागरिकों को उपनिवेशी प्रजा में रूपांतरित करना। ये कार्यव्रत गवर्नर–जनरल विलियम बैंटिक द्वारा तैयार की गई शिक्षा नीति के लिए आधार बनीं। ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा लागू की गई अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति भारत के बड़े–बड़े शहरों जैसे बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में अति लोकप्रिय बनने लगी क्योंकि इस माध्यम से पढ़ने से नौकरियाँ प्राप्त हो सकती थी। आर्थिक स्थिति बहुत अधिक आशाजनक या उदीयमान नहीं थी और नौकरियाँ केवल निम्न स्तर पर ही उपलब्ध थी। यद्यपि रोजगार महत्वपूर्ण था, रोजगार के अतिरिक्त शिक्षा के द्वारा शिक्षित भारतीय का आत्मबोध प्रभावित हुआ और इस प्रकार एक सकारात्मक प्रतिरूप उभरने लगा, जिससे शिक्षा की माँग और बढ़ी (कुमार, 35)।

शीघ्र ही उच्च शिक्षा के लिए माँग इतनी तीव्र हो गई कि सन् 1854 में भारत की ओर से ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को एक टिप्पणी भेजी गई जिसमें समग्र रूप से शिक्षा के संदर्भ में अनुशंसाओं के अतिरिक्त भारत में विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव भी सम्मिलित था। इसके आधार पर एक अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेज – सन् 1854 का शिक्षा डिस्पैच अथवा **वुड्स डिस्पैच** कहा जाता है। यह डिस्पैच कंपनी ने भारत के गवर्नर–जनरल डलहौजी को भेजा। चार्ल्स वुड ने 100 अनुच्छेदों का एक दिशा–निर्देश भेजा जिसमें शिक्षा के विभिन्न पक्षों से संबंधित अनुशंसाएँ सम्मिलित थी। इस डिस्पैच के प्रारंभिक अनुच्छेद से लिया गया एक उद्धरण इस महत्वपूर्ण दस्तावेज के स्वरूप को बताता है।

"महत्व के अनेक विषयों में से शिक्षा ही एक ऐसा विषय है जो हमारे लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो सकता है .... इससे भारत के मूल निवासियों को वे व्यापक नैतिक और भौतिक वरदान प्राप्त होंगे जो लाभदायक ज्ञान के सामान्य प्रसार के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं तथा आपको ऐसे नौकर मिल सकेंगे जिनकी सत्यनिष्ठा के आधार पर आप भारत में भरोसे के साथ कार्यालयों को संचालित कर सकते हैं ...."

पाश्चात्य ज्ञान की श्रेष्ठता पर बल देते हुए डिस्पैच में लिखा हैः

विज्ञान और दर्शन की प्रणाली जिससे पूर्वी देशों से संबंधित ज्ञान का निर्माण होता है, गहन रूप से त्रुटिपूर्ण है और आधुनिक खोज और सुधार की दृष्टि से प्राच्य साहित्य में अत्यधिक कमियाँ हैं। यूरोपीय ज्ञान के प्रसार से इन्हें सुधारा जा सकता है।

विश्वविद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में इस डिस्पैच में बहुमूल्य सुझाव दिए गए हैं। इससे व्यावसायिक शिक्षा के महत्व पर बल दिया गया है और ऐसी अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की अनुशंसाएँ की गई हैं जैसे इंग्लैंड में पाए जाते हैं।

चार्ल्स वुड

वे विचार और विधियाँ जिनका अनुमोदन इस डिस्पैच में किया गया था, शिक्षा के क्षेत्र में लगभग पाँच दशकों तक छाए रहे। इसी अवधि में भारत में तेज़ी से शिक्षा प्रणाली का पाश्चात्यीकरण हुआ तथा उसी तेज़ी से देशज प्रणाली का ह्रास हुआ।

2.3.1 ब्रिटिश नीति के उद्देश्य

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है मैकॉले के कार्यव्रत तथा वुड्स डिस्पैच सामान्यतः ब्रिटिश नीति के उद्देश्यों की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे,

- व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना जो रक्त और रंग में तो भारतीय है परंतु उनकी रुचियाँ, उनके विचार, नैतिकता तथा बुद्धि अंग्रेज़ों जैसी हो।
- भारत में साम्राज्य के कार्य संपादन के लिए विश्वसनीय कार्यकर्ता/सेवक प्रदान करना।
- ब्रिटिश सामान के लिए भारत में एक बाजार तैयार करना तथा उन वस्तुओं की आपूर्ति करना जिनकी आवश्यकता अंग्रेज़ों को है।

इन उद्देश्यों के साथ अंग्रेज़ उन मध्यमवर्गीय भारतीयों का एक वर्ग निर्मित करने में सफल हुए जिन्होंने देश के प्रशासन को चलाने में उनकी सहायता की। समाज के उच्च वर्ग ही ऐसे थे जिनकी पहुँच शिक्षा प्रणाली तक थी और जो अंग्रेज़ी आदर्शों में दीक्षित हुए। प्रणाली ने लिपिक तथा प्रशासक भी पैदा किए तथा इसके फलस्वरूप ऐसे व्यक्तियों का निर्माण भी हुआ जिन्होंने अंग्रेजी शासन का विरोध किया और इसके पश्चात् अंग्रेज़ों को भारत से भगाने में राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी की।

2.3.2 शिक्षा की विषयवस्तु तथा शिक्षण शास्त्र

ब्रिटिश सरकार ने अंग्रेज़ी माध्यम से एक शिक्षा प्रणाली लागू की जिसने अधिगम में रटने की प्रवृत्ति, निष्क्रियता और बिना प्रश्न किए विचारों को स्वीकार करने को बढ़ावा दिया।

दूसरे, इनके विचारों ने अंग्रेज़ी संस्कृति तथा उत्कृष्टता या अंहकार को प्रोत्साहित किया और पूर्वी ज्ञान को अंधेरे में धकेल दिया। ब्रिटिश पाठ्यचर्या पाठ्यपुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत की जाती थी जो अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों के लिए महत्वपूर्ण भूमिका में थी। क्योंकि पाठ्यपुस्तके परीक्षा के आधार पर प्रधिकार वर्ग द्वारा अनुमोदित होती थी अतः विद्यालयों में अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया में पाठ्यपुस्तकें ही सभी प्राचलों को निर्धारित करती थी। पाठ्य पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त ज्ञान के किसी अन्य स्रोत को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था।

उस समय के भारत और इंग्लैंड की पाठ्यचर्या की तुलना करते हुए गौरी विश्वनाथन लिखती हैं कि भारत और इंग्लैंड के लिए निर्धारित पाठ्यचर्याओं में पाए जाने वाले विरोधाभास इतने स्पष्ट हैं कि उन्हें देखे बग़ैर कोई रह ही नहीं सकता। जहाँ एक ओर सभी आयु वर्गों के अंग्रेज़ बच्चे आकर्षक कहानियाँ, रुमानी वृत्तांत या कथाएँ, साहसिक किस्से पढ़ सकते थे और उनका आनंद उठा सकते थे, परंतु उनकी उपनिवेशीय प्रजा को ऐसा करने के लिए सक्षम ही नहीं समझा जाता था, क्योंकि अंग्रेज़ों के विचार में इन व्यक्तियों में पूर्व मानसिक तथा नैतिक संवर्धन का अभाव था जो साहित्य अध्ययन के लिए अपेक्षित था – विशेष रूप से उनके (अंग्रेज़ों के) साहित्य का हमारे लिए कोई शिक्षाप्रद मूल्य नहीं था। कालीदास द्वारा रचित *शंकुतलम* जैसा कोई नाटक जो अपने ग्राम्य सौंदर्य, गीति काव्यात्मक सौम्यता तथा आकर्षण के द्वारा अंग्रेज़ों को भी हर्षित कर सकता था, भारतीय विद्यालयों व महाविद्यालयों में एक पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाए जाने के लिए अनुचित समझा जाता था, इस आधार पर कि प्राच्य साहित्य के ऐसे लोकप्रिय ग्रंथों में अनैतिकता और अशुद्धता भरी पड़ी है। शालीनता और अश्लीलता में भेद न कर सकना मूल निवासियों के मानस का निश्चित लक्षण है, या उनकी समझबूझ की नीरसता का द्योतक है।"

इस प्रकार भारत में अंग्रेजी शिक्षा की परियोजना ने भारतीयों में मौन अधीनता या दमन तथा हीनता की भावना को जारी रखा।

इस स्थान पर आधुनिक भारत के शैक्षिक इतिहास के वृत्तांत में तीन महत्वपूर्ण मील के पत्थर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं:

- उन्नीसवीं शताब्दी की आंग्लवादी (एन्गिलसिस्ट) – पूर्वीवादी बहस के फलस्वरूप पूर्वी साहित्य और भाषाओं को हटाकर अंग्रेज़ी भाषा को शिक्षा के माध्यम तथा एक विद्या विशेष दोनों का दर्जा दे दिया गया।
- देशज शिक्षा को क्रमशः हाशिए पर लाया गया और अंत में उसे लगभग मिटा दिया गया।
- भारतीयों की ओर से जातिवाद तथा भेदभाव के प्रति बढ़ती हुई चेतना के फलस्वरूप राष्ट्रवादी या भारतीय विद्यालय तथा भारतीय शिक्षण विधियों का सश्जन होने लगा।

अब हम ब्रिटिश सरकार की बढ़ती हुई जातिवादी तथा भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण के बीच में राष्ट्रवादी चेतना के आविर्भाव की विवेचना करेंगे।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणीः (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1) वुड के डिस्पैच में प्रतिबिम्बित शिक्षा के उपनिवेशीय मामलों का विश्लेषण करें। शिक्षा के द्वारा ब्रिटिश नीति में क्या प्राप्त करने का प्रावधान था।

....

....

....

....

2) ब्रिटिश शासन की अवधि में विद्यालयों में प्रारंभ की गई अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया के मुख्य लक्षणों की विवेचना करें। क्या यह कहना उपयुक्त होगा कि अंग्रेजी आधिपत्य अभी भी चल रहा है? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए तर्क वितर्क करें।

....

....

....

....

2.4 राष्ट्रीय चेतना के पुनरुत्थान को प्रेरित करने वाले कारक

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उदय उन संबंधों के कारण हुआ जो उस समय उपनिवेशी शासन तथा भारतीयों के मध्य विद्यमान थे। यदि हम कुछ ऐसे राजाओं, कुछ बड़े जमींदारों तथा व्यापारियों को, जो उपनिवेशी शासन से प्रत्यक्ष रूप में लाभान्वित थे, को छोड़ दें तो पता चलेगा कि शेष सभी भारतीयों का ब्रिटिश शासकों द्वारा शोषण हो रहा था तथा उनके साथ पक्षपात हो रहा था। भारत में उपनिवेशी सरकार का संचालन ब्रिटेन की साम्राज्यवादी सरकार से होता था जो ब्रिटेन के व्यापारियों, पूँजीपतियों तथा अभिजात वर्ग के हितों के लिए कार्य करती थी इसने भारतीयों के हितों के लिए कार्य कभी नहीं किया। वास्तव में यह भारत में ब्रिटेन के उपनिवेशी शासन की शोषणात्मक तथा विदेशी प्रकृति ही थी जिसके कारण भारतीयों ने इस सरकार के विरुद्ध बहुत सारे विद्रोहात्मक आंदोलन छेड़ें। इसी के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय आंदोलन का जन्म हुआ। भारतीय प्रबुद्ध वर्ग, जो पहले ब्रिटिश शासन से होने वाले फायदे पर विश्वास करता था, अब देश का शोषण करने से और इसके संसाधनों को यहाँ से दूर ले जाने के कारण इनकी आलोचना करने लग गया था।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने, विशेषतः दोनों विश्व युद्धों के बीच की अवधि में जन आंदोलन का रूप ले लिया था। ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के विरुद्ध लड़ने के लिए विभिन्न जातियों तथा वर्गों से लाखों व्यक्तियों को लामबंद किया। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने तीन बड़े जन आंदोलन छेड़ें। **असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन,** तथा **भारत छोड़ो अभियान** – जिसने भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य की नींव हिला दी। इन जन–आंदोलनों के अतिरिक्त कुछ अन्य आंदोलन जैसे सक्रिय क्रांतिकारी, कर्मण्यतावादी अभियान, किसान आंदोलन तथा मजदूर आंदोलन ने भी भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरकार का प्रभावी नियंत्रण कायम रखने के लिए अंग्रेज़ी सरकार ने कई तरीके अपनाए। मजे की बात तो यह है कि इन दमनात्मक तरीकों के कारण भारतीयों को भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारण के विकास में सहायता मिली और वे सभी एक–दूसरे के निकट आए और संगठित हो गए। आइए, अब एक एक करके इन कारकों की विवेचना करें।

2.4.1 केन्द्रीकृत प्रशासन तथा आर्थिक एकीकरण

उपनिवेशी शासन का मुख्य जोर केन्द्रीकरण पर था। इनका प्रयत्न रहा कि वे भारत के ब्रिटेन शासित भाग का अभिशासन मात्र एक केन्द्र पर बैठे–बैठे करें। इन्होंने प्रशासन की एक एकीकृत प्रणाली का सृजन किया और भारतीयों में यह बोध कराया गया कि यह विशाल भारत अंग्रेज़ों का ही है। अतः समस्त ब्रिटिश शासित प्रदेशों के लिए फौज, पुलिस, न्यायपालिका राजस्व उगाही विभाग तथा अभिशासन की अन्य विभिन्न प्रणालियाँ एक जैसी बना दी। बहुत से राजाओं द्वारा शासित राज्यों ने भी अंग्रेज़ी तरीका अपनाना आरंभ कर दिया।

एक और स्तर पर, बिना रुकावट के अपने औद्योगिक उत्पाद बेचने के लिए एक एकीकृत बाजार का सृजन करने का प्रयास किया। इंग्लैंड से आयातित मशीन निर्मित वस्तुओं के कारण भारतीय शिल्प उद्योग को तहस–नहस कर दिया और राजस्व नीतियों की कार्य प्रणाली ने ग्रामीण और स्थानीय आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को काट डाला। इनके परिणामस्वरूप देश के आर्थिक एकीकरण की स्थितियों का उदय हुआ।

2.4.2 प्रिंटिंग प्रैस (छापाखाना)

भारत में छापाखाना (प्रिंटिंग प्रैस) उपनिवेशी शासन में ही आया। इसकी सहायता से बहुत कम लागत से विचार और मतों का प्रसार विशाल जनसमूह तक पहुँचाया जाना संभव हो पाया। बहुत सारे समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ बहुत सारी भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेज़ी में छपने आरंभ हो गए। इनमें अनेक समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं का संचालन राष्ट्रवादियों द्वारा किया जाता था और उनके लेखों में सरकार की नीतियों की टीका–टिप्पणी या समीक्षा हुआ करती थी। भारतीयों को इन नीतियों के विरुद्ध आवाज उठाने तथा राष्ट्रवाद लोकतंत्र तथा स्वशासन के प्रसार के लिए प्रेरित किया जाता था।

2.4.3 संचार माध्यम

डाक तथा तार सेवाओं की सहायता से भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक संदेश भेजे जाने संभव हो गए। रेल द्वारा लोगों की बड़ी तेज़ी से देश के विभिन्न भागों में ले जाया जाना संभव हो पाया। यद्यपि इन सभी संचार माध्यमों का प्रयोजन सरकारी संदेश ले जाना और फौजी दस्तों को शासकों की सहायतार्थ इधर–उधर ले जाना तथा अंग्रेज़ व्यापारियों के लिए कच्चा माल तथा अन्य वस्तुएँ ले जाना था परंतु इससे भारतीयों में भी संचार तथा संप्रेषण सुगम हो गया।

2.4.4 नई शिक्षा प्रणाली

भारतीयों को लिपिकीय तथा निम्न प्रशासकीय पदों के लिए थोड़े खर्च में प्रशिक्षित करने के लिए एक नई शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया गया। लार्ड मकॉले के शब्दों में इसका मुख्य उद्देश्य या प्रयास ऐसे व्यक्तियों के एक वर्ग का निर्माण करना था "जो रक्त और रंग से तो भारतीय हों परंतु स्वभाव, विचारों, नैतिकता और बुद्धि की दृष्टि से अंग्रेज़ हों"। परंतु जैसी उनकी अपेक्षा थी यह विचार सफल नहीं हो पाया। अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली ने भारतीय प्रबुद्ध वर्ग में स्वतंत्रता तथा समानता के विचारों का भी समावेश कर दिया और इसके द्वारा राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होने लगी।

2.4.5 ब्रिटिश शासन का भेदभावपूर्ण स्वभाव

अंग्रेज़ों के साथ अपने दैनिक व्यवहार तथा अन्तःक्रियाओं के अंतर्गत मध्यमवर्गीय भारतीयों ने यह अनुभव करना आरंभ किया कि जाति भेद के आधार पर उनके साथ पक्षपात किया जाता था। वास्तव में, औपनिवेशिक शासन में जातिवाद इतनी गहराई से जमा हुआ था

कि यह मात्र सामाजिक स्तर पर ही व्यवहार में नहीं था अपितु फौज में, पुलिस में, सरकारी कार्यालयों में तथा न्यायिक मामलों में प्रत्येक स्तर पर निर्णायक कारक योग्यता न हो कर, त्वचा का रंग होता था। इस कारण भारतीयों को अपमानित होना पड़ता था।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1) अंग्रेज़ी शासन के दौरान वे कौन–से कारक थे जिनके कारण राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ? इनसे शिक्षा का प्रसार कैसे हुआ?

....

....

....

....

2) नई शिक्षा प्रणाली के कारण किस प्रकार भारतीयों के एक ऐसे वर्ग का निर्माण हुआ जो ब्रिटिश शासन का विरोध कर सकते थे?

....

....

....

....

2.5 मध्यम वर्ग, प्रबुद्ध वर्ग तथा सामाजिक सुधार

औपनिवेशिक शासन ने भारतीयों के एक नए वर्ग को उभरते देखा जिसके सदस्य अधिकांशतः उपनिवेशी व्यवस्था द्वारा निर्मित शिक्षित घरानों तथा पेशावरों से संबंध रखते थे। यह वर्ग किसी शाही राज दरबार से अथवा किसी धार्मिक प्रतिष्ठान से नहीं जुड़ा था, बल्कि अपने आप उभरा, सिवाय इसके कि यह अपने संपोषण के लिए औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता था। अपनी परंपराओं में भली भाँति कुशल इस वर्ग ने नए विचारों के उस पूर्ण विस्फोट का सामना किया। जिसने पाश्चात्य विश्व को दिशा व रूप दिया था। अपने आपको इस योग्य बनाया कि अपने समाज और इसकी संस्थाओं को उनके गुण–दोषों के आधार पर परख सकें। इन्होंने पाया कि शिशु हत्या, बहु–विवाह, सती प्रथा, अस्पृश्यता, स्त्री शिक्षा का निषेध, विधवा पुनर्विवाह और तर्कमूलक, विवेचनात्मक ज्ञान का अभाव उनके समाज की विशेषताएँ थीं। इसके अतिरिक्त धार्मिक तथा सामाजिक प्रथाएँ अविच्छेद्य थी, इस प्रकार, सभी मानव प्रथाओं के वैधीकरण के लिए धर्म का सहारा लेना पड़ता था। संस्थापित या प्रतिष्ठित रूप में शिक्षा संस्कृत, अरबी या पारसी भाषाओं के माध्यम से दी जाती थी जिसमें विवेचनात्मक विषयवस्तु का अभाव था। शिक्षा में भी जाति और लिंग भेद स्पष्ट दिखाई देता था, ग़ैर–ब्राह्मण तथा महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा जाता था।

2.5.1 नए वर्ग के विचार तथा दर्शन

इस नए वर्ग के विचार और दूरदर्शिता का विवरण राजा राम मोहन रॉय की रचनाओं में

सुस्पष्ट रूप से मिलता है। राजा राम मोहन रॉय जिनके पास पारसी, अरबी, संस्कृत, इब्रानी (यहूदी) तथा कई अन्य यूरोपीय भाषाओं का ज्ञान था, विभिन्न धार्मिक परंपराओं की गहन अंतदृष्टि थी। उन्हें यूरोप में प्रचलित विचारों की गतिशीलता में महारत प्राप्त थी। उन्होंने यह अनुभव किया कि व्यापक रूप से फैली निरक्षरता, अज्ञानता और सती प्रथा, शिशु हत्या, अत्यधिक कर्मकाण्ड, बहुविवाह और हिन्दु विधवाओं के पुनर्विवाह पर लगी पाबंदी जैसे अमानवीय कृत्यों तथा प्रथाओं के उन्मूलन के लिए परंपराओं की समीक्षा अनिवार्य है। इन प्रथाओं का वैधीकरण धार्मिक ग्रंथों तथा परंपराओं का आह्वान कर किया जाता था। राजा राम मोहन रॉय और तत्पश्चात् बंगाल में विद्या सागर, आंध्र प्रदेश में वीर शालिंगम तथा महाराष्ट्र में कृष्ण शास्त्री चिपलुंकर ने, यह सिद्ध करने के लिए कि हिन्दू धर्म में ऐसी प्रथाओं की आज्ञा नहीं दी जाती जो ब्राह्मणों के गलत और प्रायः झूठी व्याख्याओं पर आधारित हैं स्वयं शास्त्रों का अध्ययन किया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि परंपराओं को तर्क पर खरा उतरना चाहिए और वे सामाजिक कल्याण या भलाई के लिए हों। और इस बात में भी स्पष्ट थे कि सामाजिक हित समानता, स्वतंत्रता तथा भाई चारे (बंधुत्व) में होता है। इस रूप में राजा राम मोहन रॉय को अग्रदूत समझा जाता है।

2.5.2 सामाजिक सुधारक तथा शिक्षा पर सार्वजनिक बहस

सुधारकों ने कभी भी परंपराओं को नकारा नहीं अपितु उन्हें एक विवेचित मूल्यांकन की कसौटी पर परखा। इस प्रकार सामाजिक सुधारकों ने यह ध्यान रखा कि, जैसे राजा राम मोहन रॉय ने मिरात–उल–अखबार के द्वारा किया था, उन्होंने भी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से शिक्षा पर एक सार्वजनिक बहस करानी चाहिए। केशवचंद्र ने *"इंडियन मिरर"* तथा *सुलभ समाचार* द्वारा, बाल शास्त्री जम्भेकर ने *"दर्पण"* (1832) द्वारा लीखी टाडी ने प्रभाकर के द्वारा यह कार्य किया। लगभग सभी सामाजिक सुधारों से संबंधित समस्याओं पर सार्वजनिक बहस कराई गई जिसमें एक मूल लोकतांत्रिक सिद्धांत प्रतिबिंबित हुआ जिस के शुभ परिणाम राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्राप्त हुए। इन साहित्यिक उद्गारों का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि देशी भाषाएँ समृद्ध बनती गई जैसे बंगाली, असमी, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू और अन्य मुख्य भाषाएँ। सुधारकों ने परोक्ष रूप में भाषाई समुदायों के विकास में योगदान दिया, जिसे सन् 1890 के दशक में स्पष्ट रूप से पहचान मिली, और अंत में भाषा के आधार पर अलग राज्य की स्थापना की माँग में योगदान दिया; जैसे उड़ीसा, आंध्र प्रदेश इत्यादि।

सुधारकों ने यह भी अनुभव किया कि अपने समाज को मिशनरियों तथा औपनिवेशिक आलोचना से बचाने के लिए और स्थाई सुधार लाने के लिए, महत्वपूर्ण होगा कि न केवल समाज के सभी वर्गों के पुरुषों को शिक्षित किया जाए अपितु महिलाओं को भी शिक्षा दी जानी चाहिए। उन्होंने एक विवेचनात्मक तथा वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली के लिए अभियान चलाया। राजा राम मोहन रॉय का तर्क था कि "भारत को संस्कृत ज्ञान के पुनर्जीवन की आवश्यकता नहीं है अपितु आवश्यकता है कि एक अधिक उदार व प्रबुद्ध शिक्षण प्रणाली की, जिसमें गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन शास्त्र, शरीर रचना विज्ञान तथा अन्य लाभकारी विषय सम्मिलित हों।" यह लार्ड मैकॉले था, जो कि वाइसराय की परिषद में कानून सदस्य था तथा जिसके निर्णायक हस्तक्षेप से अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली का मुद्दा महत्वपूर्ण रहा। यद्यपि, मैकॉले की इच्छा थी कि शिक्षा ऐसी हो जो भारतीयों के ऐसे वर्ग की स्थापना कर सके जो रंग से तो भारतीय हों परंतु स्वभाव से वे अंग्रेज़ हों तथापि राजा राम मोहन रॉय और अन्य सुधारक नए ज्ञान के फलों को भारत में लाना चाहते थे और चाहते थे कि भारतीय नए विचार और नए भाव से परिपूर्ण हों।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ जिसने राष्ट्रीय चेतना के विकास को एक तेज़ धार प्रदान की। राष्ट्रवादी विचारों का प्रसार विभिन्न भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी

में छपने वाले समाचारपत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से होने लगा और विभिन्न राष्ट्रवादी राजनीतिक संगठनों के क्रियाकलाप के आधार पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य विभिन्न भाषिक, क्षेत्रीय तथा धार्मिक पृष्ठभूमि से आए सभी भारतीयों में एकता, घनिष्ठता और मित्रता का निर्माण करना था। तीन भारतीय चिंतकों ने शिक्षा पर अपने विचार स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किए और इस अवधि में उन्हें एक दिशा दी जिसने शिक्षा के दर्शन और कार्यप्रणाली को प्रभावित किया।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणीः (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1) सामाजिक सुधारकों द्वारा प्रारंभ की गई जन शिक्षा पर वाद–विवाद से निकले महत्वपूर्ण लक्षणों की विवेचना करें।

....

....

....

....

2.6 अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रयासः गोपाल कृष्ण गोखले

समाज के संभ्रांत वर्ग में शैक्षिक अवसरों का केन्द्रीकरण जो औपनिवेशिक काल में प्रचलित था, अंग्रेज़ शासकों ने अधोगामी निस्यंदन (डाउनवार्ड फिल्ट्रेशन) सिद्धांत के आधार पर उचित ठहराया, जो नीचे दिया गया है।

"तथापि शिक्षा में सुधार जो किसी जनसमूह/राष्ट्र की नैतिक तथा बौद्धिक स्थिति को उन्नत करने में सर्वाधिक प्रभावी रूप से योगदान कर सकते हैं वे ऐसे उच्च वर्ग के व्यक्तियों की शिक्षा से संबंधित होने चाहिए जिसके पास फुर्सत हों और जो अपने देशवासियों के मन को सहज रूप से प्रभावित कर सकें। इस प्रकार के सामाजिक वर्गों का शिक्षण स्तर उन्नत करने से आप अन्ततोगत्वा समस्त समुदाय के विचारों और भावनाओं में अधिक महत्वपूर्ण तथा अधिक लाभकारी रूप में परिवर्तन ला सकते हैं उसकी अपेक्षा जब आप अलग–अलग वर्गों के साथ प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने से आशा कर सकते हैं।" (कीर, 1964, पृ. 169)

राष्ट्रवादी चेतना के विकास तथा समानता के लिए अधोगामी निस्यंदन (डाउनवार्ड फिल्ट्रेशन) सिद्धांत के आधार पर व्यापक और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा की भावना का उदय हुआ, जिसके सर्वाधिक जोरदार समर्थक गोपाल कृष्ण गोखले थे। गोखले अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा के विधेयक के सर्वप्रथम और मुख्य निर्माता थे। गोखले द्वारा निर्मित इस बिल (विधेयक) की धारा 6 के अंतर्गत विद्यालय में उपस्थिति लागू करने के लिए बाल श्रम को प्रतिबंधित करने का प्रावधान पूर्वशर्त के रूप में है। अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता का समर्थन विद्यालयों में लड़के और लड़कियों के नामांकन पर उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर स्पष्ट रूप से होता है।

विद्यालय जाने की आयु वाले बच्चों में मात्र 23.8 प्रतिशत लड़के और 2.7 प्रतिशत लड़कियाँ विद्यालय में जा रहे थे। गोखले का विश्वास जनसमूह की शिक्षा में था क्योंकि वह अनुभव

करते थे कि "जनसमूह की शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य देश से निरक्षरता का उन्मूलन करना है।" निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की वकालत करते हुए वे आगे कहते हैं:

"यह कल्पना करना एक अतिश्योक्ति होगी कि सार्वभौमिक शिक्षा की कोई प्रणाली हमारी सभी बुराइयों का अंत कर सकती है, अथवा इससे एक नए सुखद संसार के द्वार खुल जाएँगे ... इतना अवश्य है कि सार्वत्रिक शिक्षा के साथ हमारे सभी प्रयासों, औपचारिक तथा अनौपचारिक सभी के लिए बेहतर सफलता की आशा जागृत होगी – ऐसे प्रयास जिनका उद्देश्य लोगों का सुधार हो, जिनमें उनकी सामाजिक प्रगति, उनकी नैतिक उन्नति, उनका आर्थिक कल्याण निहित हो।''

गोपाल कृष्ण गोखले

गोखले द्वारा किए गए सभी प्रयासों के बावजूद चयन समिति ने इस विधेयक को पारित नहीं किया और इस प्रकार भारत में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के प्रथम प्रयास पर पर्दा पड़ गया। इस विधेयक के आधारभूत सिद्धांत समय से काफी आगे के थे और इसी कारण उन्हें अंग्रेज अधिकारियों तथा धनाड्य भारतीयों के अवरोध का सामना करना पड़ा जो कि जनसमूह की शिक्षा के लिए स्वयं आर्थिक नुकसान उठाने के हक में नहीं थे।

क्रियाकलाप 2.1

ब्रिटिश शासन के दौरान दी गई अनिवार्य शिक्षा की अवधारणा की तुलना वर्तमान समय के प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के विचार से कीजिए। क्या इनमें कोई अंतर दिखाई देते हैं? ये अंतर किस कारण हो सकते हैं?

....

....

....

....

....

2.6.1 गाँधी और शिक्षा की वर्धा योजना

उस समय की शिक्षा प्रणाली के प्रति गाँधीजी की कुण्ठा की अभिव्यक्ति समय–समय पर "*हरिजन*" नामक पत्रिका के स्तंभों में की गई थी। गाँधी ने इस बात का डटकर विरोध किया कि शराब की बिक्री से प्राप्त राजस्व को शिक्षा की निधि के रूप में प्रयोग में लाया जाए। इस संदर्भ में गाँधी जी ने लिखा:

"नए सुधारों की सर्वाधिक निर्मम विडम्बना इस बात में है कि हमारे पास शराब के राजस्व के अतिरिक्त कोई और निधि शेष नहीं है जिसका उपयोग बच्चों को शिक्षा देने में किया

जा सके। यह एक शैक्षिक उलझन है, परंतु इससे हमें घबराना नहीं चाहिए" (*हरिजन* 5, 222)।

विद्यालयी शिक्षा के प्रति उनकी कुण्ठा मात्र निधि को लेकर ही नहीं थीं। उन्होंने कहा कि "यदि आप यह निश्चय कर लें कि अपने बच्चों को एक विदेशी भाषा में उनका विषय पढ़ने के दुःस्वप्न से स्वतंत्र करना है और यदि आप उनको उनके हाथों का प्रयोग लाभकारी ढंग से करना सिखा दें, तो शिक्षा की यह उलझन समाप्त हो जाएगी।" इस कथन में गाँधीजी की नई तालीम का सार छुपा है। यह एक शिक्षा प्रणाली होगी जिसमें देशी भाषाओं का प्रयोग होगा और जिसे प्रायोगिक रूप में बच्चे सीखेंगे।

प्रायोगिक शिक्षा पर उनका बल ट्रांसवाल में टाल्स्टाय फार्म पर किए गए उनके अनुभवों का प्रतिफल था, जहाँ पर उन्होंने अनुभव किया कि हाथों द्वारा किया गया श्रम मानसिक या बौद्धिक विकास के लिए अनिवार्य है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि बच्चों द्वारा विद्यालय में उत्पादित वस्तुएँ शिक्षा को स्वावलंबी बनाने में सहायक होंगी। जब उनसे पूछा गया कि उनका विद्यालय कैसा लगेगा, तो उन्होंने लिखाः

"धारणा यह है कि हमें 25 बच्चों के लिए एक अध्यापक रखना चाहिए और इस अनुपात को ध्यान में रखते हुए आप उपलब्ध अध्यापकों के आधार पर पच्चीस–पच्चीय बच्चों को जितनी चाहे कक्षाएँ या विद्यालय चला सकते हैं और इनमें से प्रत्येक विद्यालय में अलग–अलग क्राफ्ट में विशेषज्ञता हो – जैसे बढ़ईगिरी, धातुकर्मी, चर्मकला या जूते बनाना। आपने केवल इस तथ्य को ध्यान में रखना है कि आप इनमें से प्रत्येक क्राफ्ट के द्वारा बच्चे की बुद्धि का विकास करें'' (गाँधी, सी डब्ल्यू एम जी, खंड 66, पश.137)।

उस समय शिक्षा में सुधार लाने संबंधी गाँधी के आग्रह की अनदेखी नहीं की गई। अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलनों में ऐसे प्रस्तावों के प्रारूप बनाए गए जिनमें गाँधीजी की प्रारंभिक योजनाएँ प्रतिध्वनित हो रही थी। इन प्रस्तावों का कुछ अन्य बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित पर जोर थाः (i) सात वर्षों तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाए; (ii) शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा हो, (iii) शैक्षिक प्रक्रिया के केन्द्र में कोई न कोई हस्त कार्य और उत्पादी कार्य हो। सम्मेलन में वार्धा समिति का गठन किया गया जिसका दायित्व था प्रस्ताव के आधार पर एक विस्तृत योजना तैयार करना। इस समिति का अध्यक्ष डॉ. जाकिर हुसैन को बनाया गया जो जामिया मिलिया के प्रधानाचार्य थे और इसके संयोजक डब्ल्यू. अरयण्यकम को बनाया गया जो नोवा भारत विद्यालय के प्रधानाचार्य थे।

इस समिति द्वारा किए गए विचारविमर्श के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार की गई जिसमें वार्धा स्कीम के उद्देश्य/लक्ष्यों तथा कार्यान्वयन की रूपरेखा दी गई थी। 7 वर्षीय विद्यालयी प्रक्रिया पढ़ाए जाने वाले मुख्य विषय थेः शिल्प (क्राफ्ट) कार्य (जिसमें कताई–बुनाई, बढ़ई गिरी, कृषि, फल तथा सब्जियाँ उगाना तथा चर्म क्राफ्ट सम्मिलित थे परन्तु इसके अलावा अन्य शिल्प कार्य भी ले सकते हैं)। मातृ भाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान, शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, रसायन विज्ञान, खगोल विज्ञान, प्रकृति अध्ययन, वनस्पति विज्ञान व प्राणी विज्ञान), चित्रकला, संगीत तथा हिन्दुस्तानी (हिन्दुस्तानी बोलचाल के क्षेत्रों में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को देवनागरी तथा फारसी लिपि सीखनी पड़ेगी) (हुसैन, 1937, पृ. 12–13)। इस प्रतिवेदन में अध्यापक प्रशिक्षण के लिए तीन वर्षीय आवासी पाठ्यचर्या की रूपरेखा भी बनाई गई और उसकी आवश्यकता बताई इसमें एक ऐसी मूल्यांकन प्रणाली विद्यार्थियों के अपनी पसंद के क्राफ्ट कौशल, विद्यालय दिवस तथा वर्ष की अवधि, खेल के मैदान की आवश्यकता तथा प्रत्येक विद्यालय में बगीचों का स्थान, तथा विद्यालय में मध्याह्न भोजन की व्यवस्था। पहले प्रतिवेदन में कताई और बुनाई के माध्यम से क्राफ्ट शिक्षा का एक सामान्यीकृत पाठ्यचर्या तैयार किया गया। उदाहरण के तौर पर शिक्षा के एक वर्ष में गणित, सामाजिक अध्ययन, सामान्य

विज्ञान, चित्रकला और मातृ भाषा सम्मिलित होंगे। पाठ्यचर्या के अनुसार यह दर्शाने के लिए कि शिक्षा के साथ क्राफ्ट कैसे जुड़ेगा, कपास या रुई को उदाहरण के रूप में लिया गया हैः तकली पर धागे को लपटने में लपेटनों की संख्या की गिनती करना या विभिन्न वस्तुओं को गिनना तथा उन्हें व्यवस्थित करना आदि उन्हें गणित सिखाने में सहायक हो सकते हैं। सामाजिक अध्ययन में विद्यार्थी विभिन्न देशों में आदिम पुरुष व महिला के कपड़ों के विषय में सीख सकता है। विज्ञान में धुनाई और कताई पर आर्द्रता का प्रभाव आ सकता है तथा यह भी आ सकता है कि कपास के बीज कैसे अंकुरित होते हैं। ड्राईंग में बच्चे कपास के पौधे की, फल की तथा फली की आकृति बना सकते हैं। मातश्भाषा में फसल काटने के समय गाए जाने वाले गाने तथा लोक गीतों को कताई के साथ जोड़ा जा सकता है (वार्के, 1962, पृ. 120–122)। दूसरे प्रतिवेदन में जो अप्रैल 1938 में प्रकाशित हुआ जिसमें आलोचनाओं का उत्तर देने का प्रयास किया गया। इसके लिए अधिक विस्तश्त पाठ्यचर्या का प्रकाशन किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि यह स्कीम पूर्ण रूप से बाल केन्द्रित तथा बाल समर्थक थी।

यद्यपि यह नया शैक्षिक कार्यक्रम अनिवार्यतः नया नहीं था क्योंकि इसमें अंग्रेज़ शिक्षाविदों जैसे अबॅट, वुड तथा डिवी के विचारों का समर्थन था, जिनके योगदान को स्वयं गाँधीजी ने स्वीकार किया है, तथापि यह योजना उस समय भारतीय वातावरण में दी जाने वाली शिक्षा प्रणाली से मूल रूप से भिन्न थी।

क्योंकि अध्यापन कार्यक्रम की एक क्राफ्ट (शिल्प) के अधिगम के इर्द–गिर्द कल्पना की गई थी, इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान जो अब तक समाज के निम्नतम जातिसमूह के साथ संबंधित था (कताई–बुनाई, चर्म कार्य, धातु कार्य आदि)। अब विद्यालयों में केन्द्रीय अधिगम–अध्यापन प्रक्रिया का रूप ले लेगा। जैसा कि कुमार (1993) ज्ञान मीमांसा के रूप में लिखते हैंः गाँधी के प्रस्ताव का आशय था कि शिक्षा प्रणाली अपने शीर्ष पर खड़ी रहे। सामाजिक दर्शन तथा बेसिक शिक्षा की पाठ्यचर्या ने उन बच्चों का अनुमोदन किया जिनका संबंध समाज के निम्नतम स्तर से था। इस प्रकार इस योजना में सामाजिक परिवर्तन का कार्यक्रम निहित है।

बेसिक शिक्षा की योजना में अध्यापकों को पाठ्यचर्या से संबंधित मामलों में पाठ्यपुस्तकों तथा राज्य के अधिकार से स्वायत्तता प्रदान की। सितंबर 9, 1939 को *"हरिजन"* में लिखते हुए गाँधी ने कहाः यदि पाठ्यपुस्तकों को शिक्षा का वाहन समझ लिया जाए तो अध्यापकों की सक्रिय दुनिया का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। एक अध्यापक जो पाठ्यपुस्तक से पढ़ाता है, अपने विद्यार्थियों में मौलिकता का बीज नहीं बो सकता। स्पष्टतः उसके अनुसार अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया का अस्तित्व पाठ्यपुस्तकों से बाहर भी है।

बेसिक शिक्षा में सम्मिलित मूलभाव गाँधीजी का एक ऐसे आदर्श समाज का दर्शन है जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर समुदायों में विद्यमान है। गाँधीजी के अनुसार औपनिवेशिक शासन ने गाँव की अर्थव्यवस्था को बिगाड़ कर रख दिया है जिसका शहरी लोग शोषण कर रहे हैं। औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता का अर्थ है गाँवों का सशक्तीकरण और एक व्यावहारिक समुदाय के रूप में इनका विकास। बेसिक शिक्षा योजना का अर्थ था गाँव को शहरों के साथ–साथ विकसित करना। इसमें बच्चों को उत्पादी कार्यों के लिए प्रशिक्षण देना और उनमें उन मूल्यों और अभिवृत्तियों का विकास करना जो एक सहकारी समुदाय में जीवनयापन के लिए उचित है (कुमार 1993)। गाँधीजी की बेसिक शिक्षा की धारणा रूप और विषयवस्तु की दृष्टि से भी पूर्ण रूप से धर्मनिरपेक्ष थी। जब गाँधीजी से धार्मिक शिक्षा पर उन के विचार पूछे गए तो उन्होंने कहाः

"हमने शिक्षा की वर्धा स्कीम में धार्मिक शिक्षा के अध्यापन को निकाल दिया है क्योंकि हमें डर है कि जिस भाँति आज विभिन्न धर्मों की शिक्षा दी जाती है और उन्हें व्यवहार में लाया

जाता है, एकता की बजाय संघर्ष को जन्म देते हैं। परंतु दूसरी ओर मेरा विश्वास है कि सच्चाई, जो सभी धर्मों में सर्वनिष्ठ है, उसे सभी बच्चों को पढ़ाया जा सकता है और पढ़ाना चाहिए। ये सच्चाइयाँ शाब्दिक रूप में या पुस्तकों के माध्यम से नहीं पढ़ाई जा सकती। इन सच्चाइयों को बच्चे अपने अध्यापक के दैनिक जीवन से ही सीख सकते हैं। यदि अध्यापक स्वयं सच्चाई के इन सिद्धांतों व न्यायपरकता के अनुरूप अपना जीवन जीता है, उसके व्यवहार से में बच्चे उस सच्चाई और न्याय की अवधारणा को सीख सकते हैं जो सभी धर्मों का आधार होती हैं" (गाँधी, 1979, पृ.20)।

समीक्षाः

गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित बेसिक शिक्षा की योजना को कुछ दिशाओं से आलोचना झेलनी पड़ी क्योंकि उन्हें ऐसा लगता था कि इस योजना के द्वारा हिन्दू संस्कृति और धर्म को प्रोत्साहित किया जा रहा है। तथापि, आयशा जलाल तथा मुशीर–उल–हुसैन (2002, पृ. 264–265) का कथन है कि इस आलोचना को कुछ नेताओं द्वारा कांग्रेस को बदनाम करने के लिए एक औजार के रूप में देखा जा सकता है। इस योजना को ग़ैर–आधुनिक करार देते हुए भी इसकी आलोचना हुई क्योंकि गाँधीजी ने मशीनों की अपेक्षा हस्तशिल्प को अधिक महत्व दिया।

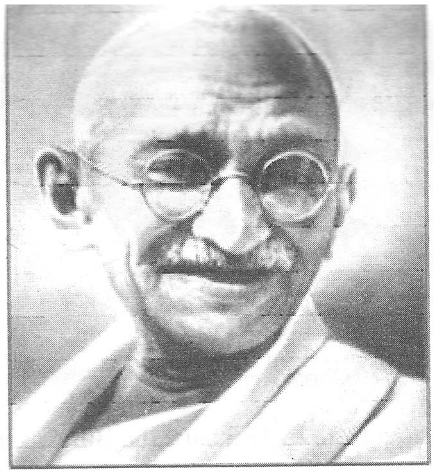

महात्मा गाँधी

2.6.2 शिक्षा पर टैगोर के विचार

जैसा कि हमने विवेचना की कि उन्नीसवीं शताब्दी की अंतिम अवधि और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक काल के दौरान भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ जिसमें अंग्रेज़ी जीवन शैली तथा अंग्रेज़ी राज की नकल करने के प्रति एक नाराजगी तथा भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। इस अवधि में लिखे टैगोर के लेख इस राष्ट्रवादी प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित करते हैं। शैक्षिक सुधारों के प्रति उसका सरोकार सन् 1901 के पश्चात तेज़ी से बढ़ा और इससे भी अधिक सन् 1905 के पश्चात।

टैगोर का विचार था कि शिक्षा का अभाव भारत की प्रगति के रास्ते में एक सबसे बड़ी रूकावट है और यही सभी समस्याओं की जड़ है। उसके विचार में औपनिवेशिक शासन असंतोषजनक था क्योंकि शिक्षा के संदर्भ में इसका एक मात्र उद्देश्य केवल कार्यालयों को संभालने तथा भारत में अंग्रेज़ी व्यापार में सहायता करने के लिए लिपिक तैयार करना था। किसी सार्थक शैक्षिक प्रणाली के मूल उद्देश्यों जैसे सृजनात्मकता, स्वतंत्रता, हर्ष या आनंद तथा देश की सांस्कृतिक विरासत की पूर्णरूपेण अवहेलना की गई थी।

इस शिक्षा को आधुनिक भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि विषयवस्तु के लिहाज़ के बिना

भी भारत के बाहर शिक्षा जगत में हो रहे विकासों में से किसी के साथ भी यह शिक्षा प्रणाली संबंधित नहीं थी। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी था जो भारतीय विद्यार्थियों के लिए एक अतिरिक्त बोझ था। शैक्षिक प्रक्रिया वैज्ञानिक अभिवृत्ति तथा खोज की भावना का विकास करने में असफल रही। इसके अतिरिक्त इससे भारतीय समाज दो वर्गों में बँट गया – एक वह जो अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कर रहा था तथा दूसरा वह जो ग्रामीण प्रदेशों में रह रहा था और शहरों और कस्बों में रहने वाले समृद्ध, शिक्षित अंग्रेज़ी बोलने वाले वर्ग से बिल्कुल कटा हुआ था।

सन् 1892 में जब टैगोर मात्र 31 वर्ष के थे, "भारत में शिक्षा" पर अपना प्रथम मुख्य लेख लिखा। उस समय उसका शिक्षा पर विशेषज्ञ होने का कोई दावा नहीं था। अपने इस लेख में जो बंगाली भाषा में लिखा था और जिसका शीर्षक था "दी मिसमैच ऑफ एजुकेशन", टैगोर ने औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति की कठोर आलोचना की। बचपन में हुए अध्यापकी प्रक्रिया के प्रति अपने स्वयं के अनुभवों और बाद के जीवन के प्रेक्षणों के आधार पर उसने अंग्रेज़ी सरकार द्वारा स्थापित शिक्षा प्रणाली को उनकी अपनी शिक्षा प्रणाली का एक अक्षम नकल पाया जिसके अनुसार केवल कुछ व्यक्ति ही शिक्षित हो सकते थे और वे भी अपर्याप्त रूप में। शिक्षा में टैगोर के विचारों का और अधिक विकास सन् 1905 के पश्चात् हुआ जब बंगाल में स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा अभियान का आरंभ हुआ। इस द्वितीय अवस्था में जिसकी अवधि लगभग सन् 1905 से सन् 1915 के बीच रही टैगोर ने शिक्षा पर अपने विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति करने में एक अग्रणी भूमिका निभाई। परंतु उसने अपनी अद्वितीय विचारधारा को बनाए रखा और उसके विचार पूर्ण रूप से स्वदेशी आंदोलन के राजनीतिक नेताओं के विचारों से समनुरूप नहीं थे। टैगोर के शैक्षिक दर्शन की तीसरी अवस्था, जिसे सन् 1914 और सन् 1935 के बीच कहा जा सकता है का विवेचन कर सकते हैं। यहाँ उन्होंने उसने यूरोपीय राष्ट्रवाद, जो उनके विचार में आक्रामक और शोषणात्मक थी, और भारतीय सभ्यता जो सदैव सहक्रियात्मक, बहुवादी और अन्तःसांस्कृतिक आदान–प्रदान और समझ थी में अंतर देखा और टैगोर की शिक्षा के प्रति यह धारणा विश्वभारती की स्थापना के रूप में सन् 1921 में सिद्धि प्राप्त हुई (भट्टाचार्य 2004, पृ. 258–74)।

टैगोर ने शिक्षा और समाक्षात्माक चिंतन के मध्य गहन संबंध होने की बात कही। इस संदर्भ में बल सामान्य विषयों पर ही नहीं था अपितु उन्होंने कलाओं को शैक्षिक अनुभव का केन्द्रीय पक्ष माना। टैगोर ने शिक्षा में एक समेकित उपागम पर विशेष बल दिया जहाँ पर विद्यार्थी के व्यक्तिगत क्षमताओं की खोज की जाती है और बच्चे को उसके सामाजिक परिप्रेक्ष्य या वातावरण से दूर नहीं किया जाता। उसका बल ऐसी शिक्षा पर था जहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी की बजाए देशी भाषाएँ हो। टैगोर एक उत्कृष्ट कवि, एक धार्मिक मानवतावादी थे जिसने तर्कपरणता तथा वैज्ञानिक प्रगति का समर्थन किया। उन्होंने नाटक, लघु कहानियाँ, उपन्यास और अन्य लेख लिखे। उनकी गद्यात्मक रचनाओं की प्रकृति मुख्यतः विवेचनात्मक, ग़ैर–परंपरावादी तथा आत्माभिव्यक्ति की समर्थक थी। उसके अनुसार विद्यालय का लक्ष्य ऐसे नागरिकों का निर्माण करना था जो स्वतंत्र रूप से तर्क वितर्क कर सकें, और परंपराओं के विषय में जिनकी सोच विवेचनात्मक हो, विभिन्न प्रकार की वैश्विक संस्कृतियों तथा धर्मों को समझ सकें और कलाओं के माध्यम से अपनी कल्पना तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सकें।

टैगोर की दृष्टि में प्रत्येक बच्चा सदैव शिक्षा का केन्द्र होना चाहिए। प्रत्येक बच्चे को ऊपर उठने और अपने आपको अनुशासित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। शिक्षा की दशा पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए, विशेषतः विद्यालय की, टैगोर "माई विद्यालय" नामक अपने एक लेख में लिखते हैं:

"कि वे दिन मेरे लिए दुःख भरे थे। मैं इसका आरोप पूर्ण रूप से न तो अपने व्यक्तिगत स्वभाव पर मढ़ सकता हूँ और न उस विद्यालय के विशिष्ट अवगुण पर जहाँ मुझे पढ़ने के लिए भेजा गया था। हमारा नियमित विद्यालय बच्चों को ऐसी दुनिया में बलपूर्वक खींच लेता है जो ईश्वर के अपने कार्यों के रहस्यों से परिपूर्ण है, जो व्यक्तित्व की अर्थगर्भिता से भरी हैं। यह (विद्यालय) अनुशासन की ऐसी विधि है जो व्यक्तिगतता का हिसाब नहीं रखती, यह तो एक ऐसा कारखाना है जो पीस कर एक जैसी चीजें बाहर निकालने के लिए अभिकल्पित किया गया हैं। ये शिक्षा के अपने रास्ते खोजने में यह .... काल्पनिक औसत सीधी रेखा का अनुसरण करते हैं। परंतु जीवन रेखा कभी सरल रेखा नहीं होती, क्योंकि यह औसत की लाइन के साथ (झूमा–झूमी) खेलने की शौकीन है, अपने सिर पर विद्यालय की डॉट–फटकार खाती है। क्योंकि विद्यालय के अनुसार वह जीवनपूर्ण (आदर्श) होता है जो अपने आप के साथ मृत की भांति व्यवहार करने की अनुमति देता है जिसे एक जैसे अथवा सममित टुकड़ों में काटा जा सके। यह मेरी पीड़ा कारण था जब मुझे विद्यालय भेजा गया। क्योंकि मैंने अनुभव किया कि वहाँ मेरी दुनिया मेरे इर्द गिर्द से समाप्त होती जा रही है, जिसके स्थान पर लकड़ी के बने बैंच और सीधी खड़ी दीवारें आ रही हैं जो मेरी ओर ऐसे आँखे फाड़ कर देख रही है जैसे एक अन्धे व्यक्ति की भावशून्य टकटकी हो। मैं एक विद्यालय मास्टर की कृति नहीं था जब मैंने इस दुनिया में जन्म लिया तो सरकारी शिक्षा बोर्ड से परामर्श नहीं लिया गया था। परंतु यह क्या कोई कारण हो सकता कि मेरे सृष्टा की इस भूल की वजह से मेरे से वे प्रतिशोध लें?

रबिन्द्र नाथ टैगोर

टैगोर द्वारा लिखित "दी पैरेट्स ट्रैनिंग" (तोते का प्रशिक्षण) नामक कहानी जो नीचे दी गई है वर्तमान शिक्षा प्रणाली में एक अंर्तदृष्टि प्रस्तुत करती है।

एक समय एक पक्षी था। वह अज्ञानी था, अशिक्षित था। गाता तो ठीक से था परंतु धर्म ग्रंथों का पाठ करने में अक्षम था। यह बड़े सुंदर ढंग से बार–बार फुदकता रहता था, परंतु शिष्टाचार की कमी थी। राजा ने अपने आपसे कहाः अन्ततोगत्वा अज्ञान महँगा पड़ता है। क्योंकि मूर्ख भोजन तो उतना ही करते हैं जिनता उनसे अच्छे व्यक्ति करते हैं, परंतु बदले में देते कुछ नहीं। उसने अपने भतीजों को अपने पास बुलाया और उन्हें कहा कि इस पक्षी को सही शिक्षा दी जाए।पंडितों को बुलाया गया और वे तुरंत मामले की जड़ तक पहुँचे। उनका निर्णय था कि पक्षियों की अज्ञानता का कारण घटिया घोसलों में रहने की उनकी स्वाभाविक आदत है। अतः पंडितों के अनुसार पक्षी की शिक्षा के लिए प्रथम अनिवार्य चीज है एक उपयुक्त पिंजरा।पंडितों को उनका इनाम मिल गया और वे खुशी खुशी अपने–अपने घरों को लौट गए।शानदार सजावट वाला एक सोने का पिंजरा बनवाया गया। विश्व के सभी भागों से इसे देखने की भीड़

उमड़ पड़ी। "संस्कृति को बंदी बनाकर पिंजरे में बंद कर दिया"। हर्षोन्माद तथा उल्लास के साथ भीड़ में से एक चिल्लाया और उसकी आँखों से आसू आ गए। दूसरों ने कहाः यदि संस्कृति खो भी जाए तो क्या, पिंजरा तो अंत तक रहेगा ही; यह वास्तविक तथ्य है।पक्षी के लिए यह कितने भाग्य की बात है।सुनार ने पुरस्कार में मिले धन से अपना झोला भरा और तुरंत अपने घर की तरफ चल पड़ा।पंडित पक्षी को शिक्षित करने के लिए बैठ गया। उचित विचार–विमर्श के साथ थोड़ी आत्मसंतुष्टि दिखाते हुए कहाः हमारे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जितनी पाठ्यपुस्तके हो, कम हैं।भतीजे एक साथ लिपिकों व धर्मशास्त्रियों की एक विशाल भीड़ साथ ले आए। उन्होंने पुस्तकों से नकल की और कापियों से नकल की। जब तक कि हस्तलिपियों का एक इतना ऊँचा ढेर न लग गया जहाँ पहुँचना भी संभव नहीं था। लोग विस्मय से बड़बड़ाए। "ओह, संस्कृति का टावर कितना ऊँचा है, इसका अंतिम छोर तो बादलों में छुप गया है!"लिपिक बड़ा हल्का महसूस करते हुए शीघ्रता से अपने घरों की तरफ चल पड़ें, उनकी जेबें पूर्ण रूप से भरी हुई थी।भतीजे पिंजरे को उपयुक्त रूप से व्यवस्थित करने में उग्र रूप से व्यस्त थे। ज्यों–ज्यों निरंतर रूप से पिंजरे की सफाई, मंजाई व पालिश चलती गई, लोगों ने संतोषपूर्वक कहा : "वास्तव में प्रगति इसका नाम है।" बहुत से लोगों को पक्षी के इस प्रशिक्षण के लिए नियोजित किया गया और इनसे भी ऊपर पर्यवेक्षक नियुक्त किए गए। इन सभी के दूर के रिश्तेदार वहीं पर आ गए, उनके लिए एक महल बनाया गया और बाद में वहीं पर खुशी खुशी रहने लग गए।इसकी दूसरी त्रुटियाँ कुछ भी हो, पर दुनिया में छिद्रन्वेषकों की भी कमी नहीं होतीः और लोग कहने लग गए, प्रत्येक जीव चाहे व कितनी ही दूर से इस पिंजरे से जुड़ा था फलफूल रहा था, सिवाय इस पक्षी के। जब यह टिप्पणी राजा के कानों तक पहुँची तो उसने अपने भतीजों को बुलाया और कहाः "मेरे प्रिय भतीजों, हम यह सब क्या सुन रहे हैं?"भतीजों ने उत्तर दियाः "महाराज, यदि इस बात की सच्चाई का पता लगाना है तो स्वर्णकारों, पंडितों, लिपिकों तथा धर्मशास्त्रियों और पर्यवेक्षकों के कथन लिए जाए कि वे क्या कहते हैं, दुनिया का काम तो आलोचना करना है। इस नुक्ताचीनी करने वालों को भोजन तो मिलता नहीं इसलिए उनकी जुबान इतनी तेज़ हो गई है।"स्पष्टीकरण इतना सुस्पष्ट व संतोषजनक था कि राजा ने अपने प्रत्येक भतीजे को अपने दुर्लभ हीरे जवाहरातों से अलंकृत कर दिया। अंत में एक दिन राजा अपनी आँखों देखना चाहता था कि इस छोटे से पक्षी के साथ उसका शिक्षा विभाग किस प्रकार से कार्य करता है। इस उत्सुकता की पूर्ति हेतु वह ज्ञान के उस महान भवन में स्वयं उपस्थित हो गया।मुख्य द्वार से शंख, घड़ियाल, तूर्य, बिगुल, नरसिंघा, झाझ, मजीरा, ढोल, ताशा–नक्कारा, तम्बुरे, बंसरी, मुरली, पीपा, मशकबीन के नाद उठने लगे। पंडितों ने जोर–जोर से मंत्रोच्चारण आरंभ कर दिया तथा स्वर्णकारों, लिपिकों व धर्मशास्त्रियों, पर्यवेक्षकों और उनके असंख्य दूर–दूर के भाई भतीजों ने जोर जोर से ताली बजानी आरंभ कर दी। भतीजों ने अपनी मुस्कान बिखेरी और कहा, "महाराज, इस सबके बारे में आपका क्या ख्याल है"। राजा ने कहा, "भयंकर रूप से यह तो शिक्षा का एक ठोस सिद्धांत लगता है।"अत्यंत प्रसन्न होकर राजा अपने हाथी पर दोबारा बैठने ही वाला था, तब पीछे से एक छिद्रांवेषक कृ कोई गंवार व्यक्ति चिल्लायाः "महाराज, क्या आपने पक्षी को देखा है?"राजा ने विस्मय से कहाः नहीं, वास्तव में वह तो नहीं देखा है। "पक्षी को तो मैं बिल्कुल भूल ही गया था।"वापिस मुड़ते हुए उसने पंडितों से पूछा कि वे पक्षी को प्रशिक्षित करने में किस विधि का प्रयोग करते हैं। राजा को दिखा दिया गया। वह अत्यंत प्रभावित हुआ। विधि इतनी विशाल तथा विस्मयकारी थी कि पक्षी तो इसकी तुलना में हास्यास्पद रूप से महत्वहीन लगता था। राजा को संतुष्टि हो गई। व्यवस्थाओं में कोई कमी नहीं थी। जहाँ तक पक्षी से कोई शिकायत की बात थी, उसकी तो अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी। इसका गला

पुस्तकों के पन्नों से पूर्ण रूप से इतना भरा हुआ था कि वह न तो चहचहा सकता था और न ही फुसफुसा सकता था। प्रक्रिया को देखने के लिए पक्षी ने अपने शरीर में एक फुरहरी या कंपन सा लिया। इस बार हाथी पर दोबारा चढ़ते हुए राजा ने राज्य के दंडाधिकारियों को आदेश दिया कि वे इन छिद्रान्वेषकों को उपयुक्त दंड दें और उसके दोनों कानों को खींच दें। अब पक्षी ठीक से रेंगता रहा, कुलबुलाता रहा और लगभग निर्जीवता के कगार पर आ गया। तथापि, वास्तव में इसकी प्रगति पूर्ण रूप से संतोषजनक थी। हालांकि, यदाकदा प्रकृति प्रशिक्षण पर विजय पा लेती है; और जब प्रातः काल का प्रकाश पक्षी के पिंजरे पर पड़ा, कई बार इसने अपने पंख एक निन्दनीय रूप में फड़फड़ाए। और यद्यपि यह विश्वसनीय नहीं लगता, पर पक्षी ने पिंजरे की सलाखों पर अपनी दुर्बल चोंच से प्रहार किया। कोतवाल गुर्राया और बोला "यह क्या धृष्ठता है"। तुरंत लोहार राजा के इस शिक्षा विभाग में आया। उसके साथ हथोड़ा और भट्ठी भी थी। हथोड़े की सहायता से शीघ्र ही एक लोहे की चेन बना दी गई और इस पक्षी के परों को काट दिया गया। राजा के सालों ने इसे देखा और अपने सिर हिलाए यह कहते हुए कि "इन पक्षियों में न केवल अच्छे भाव का अभाव होता है बल्कि कृतज्ञयता का भी अभाव होता है। "एक हाथ में पाठ्यपुस्तक लिए और दूसरे हाथ में डंडा पकड़े हुए पंडित इस मासूम पक्षी को एक चीज देते थे जिसे उपयुक्त रूप से पाठ कहा जाता है। कोतवाल को उसकी सतर्कता के लिए एक उपाधि से सम्मानित किया गया और लुहार की चेन बनाने के कौशल के लिए पक्षी मर गया। इस बात की किसी को भी ख़बर नहीं थी यह पक्षी कितनी देर पहले मरा, इस ख़बर को फैलाने वाला पहला व्यक्ति वहीं छिद्रान्वेषक था। राजा ने अपने भतीजों को बुलाया और पूछाः मेरे प्रिय भतीजों, यह हम क्या सुन रहे हैं? भतीजों ने कहाः महाराज, "पक्षी की शिक्षा पूर्ण हो गई है। "क्या यह उड़ता है? राजा ने पूछा, नहीं? पक्षी को मेरे पास लाओ" राजा ने कहा। कोतवाल, सिपाहियों और घुड़सवारों की पहरेदारी में पक्षी को राजा के पास लाया गया। राजा ने अपनी उंगली को उस के शरीर में गाड़ कर देखा। उसके शरीर में मात्र भरे हुए पुस्तकों के पन्नों की सरसराहट ही महसूस हो रही थी। खिड़की के बार अशोक वृक्ष की नई कौंपलों में से गुनगुनाती बसंत की पवन ने अप्रैल के इस प्रातः को उदास बना दिया।

वी. भारतीय (एड) (1994) रबिन्द्रनाथ टैगोर : पायोनीयर इन एजुकेशन, नई दिल्ली, साहित्य चयन, "दी पैरट्स ट्रेनिंग", रबिन्द्रनाथ टैगोर

2.6.3 गीजूभाई बढ़ेका

गीजूभाई बढ़ेका का जन्म 15 नवंबर, 1885 को हुआ था। वह व्यवसाय की दृष्टि से एक वकील था। परंतु जब से उसके पुत्र का जन्म हुआ उसकी रुचि बच्चों की शिक्षा तथा उनकी विकासात्मक आवश्यकताओं में हो गई। गीजूभाई ने अपने शैक्षिक विचार तथा धारणाएँ औपनिवेशिक भारत और औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की पभष्ठभूमि में लिखे। अपने थोड़े से प्रयोग जो उसने एक प्राथमिक अध्यापक के रूप में किए। गीजूभाई ने गाँधी के सामाजिक धारणा को पाश्चात्य शैक्षिक विचारक मेरिया मॉन्टेसरी के शैक्षणिक मूल्यों से जोड़ने का प्रयास किया।

वह भावनगर (गुजरात) में दक्षिणामूर्ति बाल मंदिर में एक प्राथमिक अध्यापक के रूप में कार्य करने लगा।

वास्तविक अधिगम उसी अवस्था में संभव है जब बच्चे करके सीखें, न कि सूचना के स्रोत के रूप में पाठ्यपुस्तकों या अध्यापकों पर निर्भर हों। गीजूभाई ने प्रयोगीकरण का सूत्रपात कर शैक्षिक प्रणाली को परिवर्तित करने की हिमायत की। उनकी यह धारणा थी कि एक अध्यापक जिसके पास सीखने की तथा वर्तमान प्रणाली पर संदेह या आपत्ति करने की

अथक शक्ति है, वह बहुत–सी ऐसी चीजों पर प्रयोग कर सकता जिससे वास्तविक अधिगम घटित हो सकता है। जो कि परीक्षा उत्तीर्ण करने या फिर कोई बाह्य पुरस्कार प्राप्त करने के लिए नहीं है। दिवास्वप्न में उसने बताया कि विद्यालय में उसके पहले दिन ने यह अनुभव करा दिया कि उसके विचार उस रूप में सफल नहीं हो रहे थे जैसे उसने सोचा था तथा योजना बनाई थी। परंतु उन्होंने विभिन्न विधियों के साथ अपने प्रयोग जारी रखें ताकि विद्यार्थी वास्तविक अवधारणाओं को सीखने में रुचि लेने लग जाए। दिवास्वप्न नामक उसका यह रचना उसके असाधारण तथा अद्भूत विचारों, प्रयोगों, सफलताओं और असफलताओं का लेखा जोखा है, और जो एक प्राथमिक अध्यापक की कहानी है। इसमें प्रतिदिन की कुछ सफलताऐं तथा कुछ असफलताऐं छुपी है, परंतु अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया को अधिक अर्थपूर्ण बनाने का एक संघर्ष है।

गीजूभाई का एक नया विचार जिस पर उन्होंने प्रयोग किए जिसमें दिन को सहज रूप से क्रियाकलाप, खेल तथा कहानियों में बाँटना था न कि पूर्व निर्धारित समय सारणी से बंधे रहना। उन्होंने बहुत से अनुपम विचार दिए जो एक विद्यालय अध्यापक के रूप में उनके चिंतन तथा व्यवहार का प्रतिफल हैं।

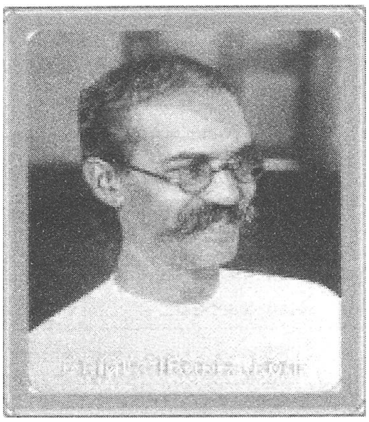

गीजूभाई बढ़ेका

क्रियाकलाप 2.2

गाँधी, रबिन्द्रनाथ टैगोर और गीजूभाई की रचनाएँ या लेख प्राप्त करें, उनका अध्ययन करें और उसके आधार पर इन सबमें पाठ्यचर्या, अध्यापन विधियों में देखे गए अन्तर तथा समानताओं पर चर्चा करें।

....

....

....

....

....

बोध प्रश्न 4

टिप्पणीः (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1) गोखले ने भारतीयों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए आग्रह क्यों किया?

....

....

....

....

2) गाँधी की शिक्षा की अवधारणा आज की शिक्षा प्रक्रिया से किस भांति भिन्न है?

....

....

....

....

3) टैगोर द्वारा प्रतिपादित बाल–केन्द्रित शिक्षा के मुख्य लक्षण क्या थे? आज के संदर्भ में इनके औचित्य पर चर्चा करें।

....

....

....

....

4) "गीजूभाई एक नवाचारी अध्यापक थे।" विद्यालय शिक्षणशास्त्र में किए गए उसके प्रयोगों के संदर्भ में इस कथन पर चर्चा करें।

....

....

....

....

2.7 शिक्षा पर राष्ट्रवादी विचार : महत्व तथा विरासत

उपर्युक्त अनुच्छेदों को पढ़ने के पश्चात् और तीन विचारकों – गाँधी, टैगोर तथा गीजूभाई के शैक्षिक विचारों पर विस्तार से चर्चा करने के पश्चात् अब हम यह देखेंगे कि क्या भारतीय विचारकों के शैक्षिक विचारों और अंग्रेज़ों द्वारा प्रतिपादित विचारों में कोई अंतर है। इस संदर्भ में कुमार (1991), आचार्य (1998) तथा बैनर्जी (1998) दावा करते हैं कि शिक्षा की भूमिका के संदर्भ में राष्ट्रवादी तथा औपनिवेशिक विचारों में काफी समानताएँ थी। इसका श्रेय इन नेताओं की सामाजिक पृष्ठभूमि को दिया जा सकता है जिनमें अधिकांश उच्च वर्गीय ब्राह्मण परिवारों से संबंधित हैं। तथापि इतिहासकार जैसे पाणिकर (1975) का कहना है कि उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय बुद्धिजीवियों के शैक्षिक विचार औपनिवेशिक शासकों की नीति से निम्नलिखित तीन आधारों पर भिन्न थे:

- प्रथम, विज्ञान शिक्षा पर बल की दृष्टि से
- द्वितीय, जन शिक्षा की आवश्यकता की अनुभूति की दृष्टि से

- तृतीय, देशी भाषाओं में शिक्षा के समर्थन की दृष्टि से

आइए, अब शिक्षा से संबंधित निम्नलिखित पक्षों पर चर्चा करें और विश्लेषण करें कि ये किस प्रकार प्रभावित हुए।

विस्तार और समानता का लक्ष्य

राष्ट्रीय प्रबुद्ध वर्ग का मानना था कि शिक्षा का पुनरुत्थान तथा विस्तार दोनों हों। यह केवल शिक्षा के एक व्यापक विस्तरण के संदर्भ में संभव था कि बहुत सारे योग्य व्यक्ति विकसित हो जिनमें से महान और सृजनात्मक व्यक्तियों का पोषण किया जा सके। विचारों के खलबलाहट और खोज के वातावरण के निर्माण के लिए भी भारतीय समाज के विभिन्न सामाजिक वर्गों से प्राप्त व्यापक और प्रसरणशील प्रबुद्ध वर्ग की आवश्यकता होगी।

औपनिवेशिक भारत में समाज के निम्न स्तरों में शिक्षा का प्रसार अत्यंत कम था। इन सुविधा वंचित वर्गों के लिए ज्योतिराव फुले तथा अम्बेडकर जैसे नेताओं ने संघर्ष किया।

संस्कृति, सश्जनात्मकता, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन

राष्ट्रीय आंदोलन का संबंध मात्र अंग्रेज़ी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करना ही नहीं था, अपितु इसका संबंध राष्ट्रीय संस्कृति और मुख्यतः विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा तथा बौद्धिक सृजनात्मकता के विकास से भी था। तथापि राष्ट्रवादियों में पारस्परिक विरोध तथा द्वंद्व भी था – उनमें जो अंग्रेज़ी शिक्षा को भारतीय संस्कृति के लिए एक संवर्धनात्मक योगदान के रूप में देखते थे और वे जो इसे उच्च भारतीय संस्कृति पर एक ग्रहण के रूप में देखते थे। तथापि दोनों का यह विचार था कि शैक्षिक संस्थाओं का नियंत्रण भारतीय हाथों में हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि बीसवीं शताब्दी के आरंभिक काल में, सन् 1905 में बंगाल के विभाजन के विरोध में हुए आंदोलन के बाद, रास बिहारी बोस तथा अन्य नेताओं के द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन का विकास हुआ।

अंग्रेज़ी का प्रभाव

स्वतंत्रता पूर्व काल की एक महत्वपूर्ण विरासत अंग्रेज़ी भाषा का शिक्षा के माध्यम पर प्रभाव है। भारतीय समाज ने यह अनुमति दी है कि समाज के एक विशिष्ट वर्ग के लिए अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालय चलाए जाए और उसके पश्चात कुछ विशिष्ट कालेजों का एक समूह स्थापित हो। समाज उच्च वर्गों और शहरी बुद्धिजीवियों के, जो अंग्रेज़ी का लाभ उठाती है और निम्न वर्गों और ग्रामीण लोगों को, जिन्हें क्षेत्रीय भाषाओं के सहारे रहना पड़ता, बीच में बँट गया।

शिक्षा की विषयवस्तु

शिक्षा की विषयवस्तु के मामले में औपनिवेशिक शासन की विरासत पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में दो प्रकरण बार–बार सामने आए हैं – देशीपना तथा संगतता या औचित्य। संस्थागत अनुशासन तथा अधिगम प्रक्रियाओं की विधियों में चापलूसी तथा अकर्मण्यता की परंपरा के उभार पर विपरीत प्रकार से ध्यान देने की आवश्यकता है। बहुत अधिक संख्या में नई और वर्तमान कमजोर संस्थाएँ आज भी यांत्रिक और असृजनात्मक विषयवस्तु की पढ़ाई जारी रख रहे हैं। यह तथ्य भी कि भारत में शांतिपूर्वक सत्ता हस्तांतरण हुआ और अतः एक आमूल विच्छेद की बजाय एक निर्विघ्न परिवर्तन या यह कहिए कि स्वतंत्रता–पूर्व काल के साथ निरंतरता वर्तमान स्थिति के लक्षणों की व्याख्या करेगी। इस स्थिति में न तो पाठ्यचर्याओं में और न ही उन विद्यार्थियों के नामांकन में जो समाज के कमजोर वर्गों से आते हैं, स्वतंत्रता के पश्चात कोई आमूल परिवर्तन आया।

अध्यापन विधियाँ

व्याख्यान द्वारा अध्यापन विधि के रूप में प्राप्त इस विरासत पर आज सामान्य परिस्थितियों में भी विजय पाना कठिन है। यह शिक्षा के विस्तरण के फलस्वरूप बड़े आकार की कक्षाओं के रूप में अधपके संसाधनों तथा बाहय परीक्षाओं के समर्थन द्वारा उपजी व्यवस्था जो हैं, थोड़े से अकाल्पनिक कार्य के साथ आसानी से समझौता करती है, अध्यापन–अधिगम में इसी विरासत को जारी रखे हुए है।

किसके लिए शिक्षा?

भारत में आज भी विशिष्ट वर्गीय शिक्षा के संदर्भ में विशेषतः उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी स्तरों पर ज्ञान का ब्रिटिश दृष्टिकोण ही विद्यमान है। यद्यपि सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राजनीतिक और शैक्षिक उद्देश्य शैक्षिक अभिगम्यता को लोकतांत्रिक बनाना रहा है। प्रावधान का विस्तार एक जैसा या सार्वत्रिक नहीं हो पाया है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए परीक्षा के माध्यम से या विद्यार्थियों की बदलती हुई आर्थिक क्षमताओं के माध्यम से विद्यार्थियों का कड़ा चयन होता है। तथापि इस दिशा में एक महत्वपूर्ण चेष्टा है, शिक्षा के अधिकार को लागू करना। आज स्वतंत्रता प्राप्ति के 67 वर्ष के पश्चात भी औपनिवेशिक समय की शैक्षिक परंपराएँ विद्यालयी प्रक्रिया की संरचनाओं में व्याप्त है। इस तथ्य के बावजूद कि कई शिक्षा आयोगों तथा नीतियों के माध्यम से समय–समय पर शिक्षा की अवस्था के विषय में चिंता अभिव्यक्त की गई है।

क्रियाकलाप 2.3

एक विद्यालयी अध्यापक के आधार पर आप क्या समझते हैं कि भारत में विद्यालयी शिक्षा समावेशी है अथवा विशिष्ट वर्ग उन्मुख? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए तर्क दें।

....

....

....

....

....

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी: (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1) क्या पाणिकर द्वारा दिए गए कथन से आप सहमत है कि:

"उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय बुद्धिजीवियों के शैक्षिक विचार औपनिवेशिक शासकों की नीतियों से अलग थे"। अपने उत्तर की पुष्टि करें।

....

....

....

....

2) देश के विकास के लिए राष्ट्रवादियों ने शिक्षा की किस भूमिका को उचित ठहराया? क्या आपके विचार में वे ऐसा करने में सही थे?

....

....

....

....

2.8 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार शिक्षा उपनिवेशकों के हितों को पूरा करती है, उपनिवेशितों के हितों की नहीं। शासक ही हैं जो उपनिवेशक शैक्षिक निर्णय लेते हैं कि किसे शिक्षा दी जाए, क्या सिखाया जाए, किस भाषा के माध्यम से सिखाया जाए और वे मापदंड कौन–से होने चाहिए जब शिक्षा का उपयोग हो सकता है। भारतीय स्थिति में अपना साम्राज्य स्थापित करने की प्रक्रिया में उपनिवेशकों ने हमारी विरासत के नकारात्मक लक्षणों से निष्कर्ष निकाले और गुणों की अवहेलना कर दी। इस प्रवृत्ति को कुछ अन्य कारकों की वजह से भी बल मिला, जैसे विदेशी भाषा का प्रयोग, विदेशी संस्कृति तथा समाज के विषय में अधिकाधिक बताना तथा एक समान बाह्य परीक्षाओं का दमघोटू प्रभाव। स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्रीय आंदोलन की सकारात्मक आकांक्षाओं को स्पष्ट करने की दिशा में प्रयास किए गए। परंतु पुरानी सुस्थापित संस्थाओं और व्यवहार प्रतिरूपों से अपने आपको अलग कर पाने में ..... काफी कठिन अनुभव हुआ। यह बात नहीं है कि सहज में उपलब्ध प्रतिरूपों की कमी है, परंतु स्वतंत्रता के बाद का अनुभव बताता है कि संरचना को परिवर्तित करने की लागत बहुत अधिक है। कई क्षेत्रों में सफलता मिली है, परंतु इस विरासत के बहुत सारे नकारात्मक तत्वों को भी इस प्रणाली में बल मिला है, जिससे हमारी आकांक्षाएँ केवल आकांक्षाएँ ही रह गई, साकार नहीं हो पाई।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भारतीय मानस में एक हीनभाव उत्पन्न करने के लिए और देशज प्रणालियों को नष्ट करने हेतु पाश्चात्य ज्ञान और अंग्रेज़ी भाषा पर जोर दिया गया।

2) रटने के द्वारा निष्क्रिय, अविवेचित ज्ञान, परीक्षाओं पर बल, मात्र पाठ्यपुस्तकों की आश्रिता। हाँ, यह अब भी जारी है (जबाव दें कि क्यों)।

बोध प्रश्न 2

1) छापाखाना, टेलीग्राफ, डाक सेवाएँ, प्रशासनिक व्यवस्था के कारण प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचने में सहायता मिली। इसके अतिरिक्त समाचार पत्र, लेख जो देशी भाषाओं में लिखे गए थे, सहायक हुए।

2) भारतीय अंग्रेज़ों की चाल को समझ गए थे और अतः वे अंग्रेज़ी शासन के प्रति अधिक आलोचनात्मक हो गए थे। अब वे जान गए थे कि दुनिया के अन्य भागों में क्या हो रहा है – समानता, स्वतंत्रता, महत्वपूर्ण मूल्य बन गए थे।

बोध प्रश्न 3

1) लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित, देशी भाषाओं में, आत्म विश्लेषणात्मक परंतु शेष संसार से सर्वोत्तम विचारों को ग्रहण करने के लिए तत्पर।

बोध प्रश्न 4

1) क्योंकि उन्होंने शिक्षा की कमी को सभी समस्याओं की जड़ के रूप में देखा।

2) इसमें कौशल विकास और ज्ञान का समन्वय हैः विद्यार्थियों के संदर्भ पर आधारित एक व्यापक पाठ्यचर्या पर लक्ष्य, आत्म निर्भरता को प्रोत्साहन।

3) आर.टी.आई. तथा एन.सी.एफ. 2005 का दबाव अधिगम अनुभव को बच्चे के लिए प्रसन्नता लाने पर है।

4) उसने कक्षा में बहुत सी नई बातों पर प्रयोग किए – कहानी सुनाना, और बहुत से अन्य अधिगम स्रोतों पर बल दिया।

बोध प्रश्न 5

1) स्वयं कीजिए।

2) उन्होंने शिक्षा के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक विकास पर बल दिया।

2.10 उपयोगी पठन सामग्री

अग्रवाल, जे.सी. (2009). डेवलपमेंट ऑफ एजुकेशन सिस्टम इन इन्डिया, नई दिल्लीः शिक्षा प्रकाशन

आल्तेकर, ए.एस. (1944). एजुकेशन इन एनसिमेंट इन्डिया (द्वितीय संस्करण) वाराणसीः इन्डियन बुक शॉप

आनन्द, एम.आर. (1947). ऑन एजुकेशन, दिल्लीः एच. किताब

बढ़ेका, जी. (1990). दिवास्वप्न, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट

वासु, ए. (1974). द गेम ऑफ एजुकेशन एंड पालीटिकल डेवलपमेंट इन इन्डिया – 1898–1920, नई दिल्लीः आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस

वासु, बी.डी. (1989). हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इन्डिया, नई दिल्लीः कॉसमो पब्लिकेशन

भारतीय वी. (सपा.)(1994). रवीन्द्रनाथ टैगोरः पायनियर इन एजुकेशन. नई दिल्लीः साहित्य चयनः ''द पैरेट ट्रेनिंग, रवीन्द्रनाथ टैगोर

भट्टाचार्य, एस. (2009) रवीन्द्रनाथ टैगोर. ऑन स्कूल एंड यूनीवर्सिटी, कंटैम्परेरी एजुकेशन डॉयलाग, नई दिल्लीः सेज प्रकाशन

धर्मपाल (1983). द ब्यटीफुल ट्रीः इंडीजिनस इन्डियन एजुकेशन इन द एटीन्थ सेंन्चुरी, नई दिल्लीः तिवलिया इम्पैक्स

एजुकेशनल रीकन्सट्रक्शन. महात्मा गांधी आर्टिकल्स वर्धा एजुकेशन कांफ्रेस प्रोसीडिंग, जाकिर हुसैन कमेटी रिपोर्ट, द प्रपोस्ट सिलेबस (बाम्बे, 1939). http://www.esusf.org/ ,08/11/2012 को उद्धृत

एल्महर्टस्, एल.के. (1961). टैगोरः पायनियर इन एजुकेशन. लंदनः मुरे

गांधी. एम. डिस्कशन विद एन एजुकेशनिस्ट, CWMG में, 66, पृ.137, एजुकेशन एज पालिटिकल चेंजः द मुस्लिम लीग रिस्पांश टू द वर्धा स्कीम, ट्रिनटी टर्म, 2011, http://www.esusf.org, से 09/11/2012 से लिया गया।

गांधी एम. के. (1955). बेसिक एजुकेशन. अहमदाबादः नवजीवन पब्लिशिंग हाउस

गांधी एम. के. (1979). डाक्यूमेंट ऑन सोशल, मोरल एंड स्पिरिचुयल वैल्यूज़ इन एजुकेशन, पृ. 20, नई दिल्लीः एन.सी.ई.आर.टी.

आई. डी. एं सी. टीम (1978). डेंजरः स्कूल! जेनेवाः वेबेटे हार्पर, आइ.सी.ए.

जमापलाना, एन (2006). मेकर्स ऑफ मार्डन इन्डियाः गोखले, गांधी एंड टैगोर. नई दिल्लीः वेदम

कुमार, के. (1991). द पॉलिटिकल एजेंडा ऑफ एजुकेशन, नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशन

कुरोयानागी टी. (1996). टोटो–चेन–द लिटिल गर्ल एंउ द विन्डो, जापानः कांडाना इन्टरनेशनल लि0

लाल एम. (2005). द चैलेन्जेस फॉर इन्डियास् एजुकेशन सिस्टमः लंदनः चाथा हाउस. (छठा संस्करण)

मनी. आर. एस (1995). एजुकेशनल आइडियास एंड आइडियास ऑफ गांधी एवं टैगोर : ए कम्पेरेटिव स्टडीः नई दिल्लीः न्यूबुक सोसायटी ऑफ इन्डिया

नरूला, एस. एवं नामक, जे.पी. (1974). ए स्टूडेंट हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इन्डिया (1800–1973). छठा संस्करण, नई दिल्लीः मैकमिलन इन्डिया

रावत, पी.एल. (1956). हिस्ट्री ऑफ इन्डियन एजुकेशन, एन्शियन्ट टू मार्डनः नई दिल्लीः भारत पब्लिकेशन

साइकेस, एम. (1988). द स्टोरी ऑफ नई तालीम, वर्धाः नई तालीम समिति

बच्चों के निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009, कानून एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकारः http://righttoeducation.in, 09/11/2012 से लिया गया

टॉलस्टॉय, एल. (1967). ऑन पापुलर एजुकेशन, शिकागोः यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस

वार्की. सी. एफ. (1939). द वर्धा स्कीम ऑफ एजुकेशन, लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस